योग दर्शन
ज्ञान का अक्षय भंडार

संपादक

प्रो. निरंजन सहाय

डॉ. अविनाश कुमार सिंह

सह-संपादक

उज्जवल कुमार सिंह

राजभवन, उत्तर प्रदेश द्वारा जारी निर्देश के क्रम में महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

योग दर्शन : ज्ञान का अक्षय भंडार

संपादक : प्रो. निरंजन सहाय, डॉ. अविनाश कुमार सिंह

सह-संपादक : उज्जवल कुमार सिंह

प्रकाशक :

भारती प्रकाशन
45, धर्मसंघ काम्प्लेक्स
दुर्गाकुंड, वाराणसी -221010
E-mail : bharatiprakashan@gmail.com
Website : https://sites.google.com/view/bharatiprakashan

© संपादक

प्रथम संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-48597-50-2

कम्प्यूटर अक्षर संरचना
कुमार ग्राफिक्स
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक

पूजा ऑफसेट
शाहदरा, दिल्ली-32

विषय सूची

पुरोवाक्

योग : चित्त शुद्धि, निर्भयता और आत्मबल का भारतीय दर्शन 7

प्रो. निरंजन सहाय

विरासत

1. संक्षेप में राजयोग 29
   स्वामी विवेकानंद
2. योग के बारे में अन्यान्य शास्त्रों का मत 35
   स्वामी विवेकानंद
3. जीवन और योग 42
   श्रीअरविंद

समकाल

1. प्रकृति का वितान और योग की उपस्थिति 48
   प्रो. आनंद कुमार त्यागी
2. योग साहित्य : ज्ञान का अक्षय भंडार 67
   प्रो.शेफाली वर्मा ठकराल
3. सम्पूर्ण जीवन योग है 79
   प्रो. नंदनी सिंह
4. योग : मानवतावादी विश्वधर्म के रूप में 86
   डॉ. ज्योति सिंह/डॉ. श्रीकांत जयसवाल
5. प्राचीन भारतीय वांग्मय में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमाण 99
   डॉ. सुनीता
6. रोगों के निवारण में योगासनों की भूमिका 113
   डॉ. चंद्रमणि
7. वर्तमान समय में योग चिकित्सा पद्धति का महत्त्व 136
   डॉ. सुनील कुमार यादव
8. योग साहित्य की वैदिक परंपरा और उसका दार्शनिक आधार 151
   स्तुति राय

9. अष्टांग योग और दैनिक जीवन में उसका लाभ 168
उज्जवल कुमार सिंह
10. योग का महिलाओ के जीवन में महत्त्व: मेरा व्यक्तिगत अनुभव 192
दीप्ति मिश्रा
11. 'योग' और भारतीय ज्ञान-मीमांसा का वि-उपनिवेशीकरण 195
डॉ. अविनाश कुमार सिंह

अष्टांग योग और दैनिक जीवन मेंउसका लाभ

उज्जवल कुमार सिंह
डॉक्टोरल फेलो
राष्ट्रीय परीक्षण सेवा – भारत
भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार एवं
शोध छात्र
हिंदी और अन्य भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ईमेल: uksingh2809rs@mgkvp.ac.in
मोबाइल नं: 9169880135

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में *योग* केवल शरीर के व्यायाम या आसनों की एक प्रणाली भर नहीं, बल्कि आत्मा की गहराइयों तक उतरने वाली एक साधना है, एक जीवन-दृष्टि है। योग का उद्देश्य केवल तन की तंदुरुस्ती या बाहरी चपलता नहीं है, बल्कि यह अंतःकरण की शुद्धि, चित्त की स्थिरता और आत्मबल की प्राप्ति है। *"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः"*, पतंजलि द्वारा प्रस्तुत यह परिभाषा किसी जटिल दार्शनिक ग्रंथ का निष्कर्ष नहीं, बल्कि जीवन का वह सूत्र है जो हर उस व्यक्ति के लिए है जो स्वयं से मिलना चाहता है। जब इंसानी ज़िंदगी आज के दौर में तेज़ी, तनाव, टकराव और तन्हाई का शिकार हो चुकी है, जब हर कोई बाहरी दुनिया में खुद को साबित करने की होड़ में अपने ही अंदर के सुकून को खोता जा रहा है, ऐसे में योग सिर्फ़ एक आध्यात्मिक अभ्यास नहीं बल्कि *एक आंतरिक क्रांति* बन जाता है।

आज की दुनिया जहाँ लोग भाग-दौड़ में उलझे हुए हैं, जहाँ रिश्ते वक़्त के साथ बिखरते जा रहे हैं, जहाँ मन का सुकून ग़ायब है, वहाँ *अष्टांग योग* हमें फिर से सिखाता है कि शांति बाहर नहीं, भीतर है। योग यह बताता है कि पहले अपने मन को साधो, फिर जगत को साधना सरल हो जाएगा। यम और नियम हमें व्यवहार की नैतिकता सिखाते हैं, आसन और प्राणायाम तन को स्थिर व सशक्त करते हैं, प्रत्याहार इंद्रियों को संयम में लाता है, धारणा और ध्यान हमें एकाग्रता का पाठ पढ़ाते हैं, और अन्त में *समाधि* — आत्मा से आत्मा की मुलाक़ात कराती है। ये आठ अंग किसी

मंदिर की आठ सीढ़ियाँ नहीं, बल्कि ज़िंदगी के वो आठ पड़ाव हैं जो मनुष्य को पशुता से देवत्व की ओर ले जाते हैं। वर्तमान समय में जब हर शख्स किसी न किसी मानसिक दबाव, चिंता, अवसाद या असंतुलन से ग्रसित है, तब योग एक ऐसा औज़ार बनता है जो व्यक्ति को खुद से जोड़ता है। मनोविज्ञान कहता है कि चित्त की वृत्तियाँ — स्मृतियाँ, वासनाएँ, इच्छाएँ — जब नियंत्रित होती हैं, तब व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होता है। पतंजलि का योगसूत्र महज़ एक शास्त्र नहीं, बल्कि चिकित्सा, परामर्श और आत्मपरिक्षण का एक समग्र मार्गदर्शन है। "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" — यानी जब चित्त की वृत्तियाँ रुक जाती हैं, तब आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होती है। यही आत्मस्थिति, यही स्व की अनुभूति, योग का परम लक्ष्य है।

यहाँ यह भी समझना ज़रूरी है कि योग केवल हिन्दू साधना का अंग नहीं है, बल्कि यह भारतीय उपमहाद्वीप की उस साझी विरासत का हिस्सा है जिसे *सभी धार्मिक-सांस्कृतिक परंपराओं* ने किसी न किसी रूप में आत्मसात किया है। चाहे वह सूफी ध्यान हो, बौद्ध विपश्यना हो, जैन संवर-निर्जरा हो या आदिवासी संस्कृति की प्रकृति उपासना — सबमें योग का कोई न कोई स्वरूप है। इसलिए आज जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मान्यता दी है, तब यह समझना और भी आवश्यक हो गया है कि योग सिर्फ़ शरीर की लचक नहीं, आत्मा की शक्ति है। यह एक *सांस्कृतिक दूत* है, जो भारत की उस सनातन चेतना को विश्व तक पहुँचा रहा है जो सदा से *वसुधैव कुटुम्बकम्* का उद्घोष करती आई है। विज्ञान भी अब यह मान चुका है कि योग से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, मानसिक रोगों में राहत मिलती है, हृदय, मधुमेह, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों में स्थायी सुधार होता है। यह एकमात्र पद्धति है जो व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा — तीनों पर एक साथ काम करती है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति जहाँ शरीर को यंत्र समझती है, वहीं योग इसे एक *जीवित, चेतन और आध्यात्मिक सत्ता* मानता है। इसलिए अष्टांग योग कोई एकपक्षीय साधना नहीं, यह समग्र जीवन-व्यवस्था है जो बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक, गृहस्थ से सन्यासी तक, सबके लिए समान रूप से फलदायी है।

आज ज़रूरत है कि हम योग को सिर्फ़ मंचों पर करने वाली एक क्रिया न मानें, बल्कि उसे रोज़मर्रा की ज़िंदगी में आत्मसात करें — सुबह की शुरुआत यम-नियमों की समीक्षा से हो, दिन का मध्य आसन-प्राणायाम से संतुलित हो और रात का विश्राम ध्यान की गहराई में हो। इस तरह योग कोई अलग की जाने वाली चीज़ नहीं, बल्कि जीने की एक विधा है। अगर हर इंसान अपने जीवन में थोड़ा-थोड़ा योग

शामिल कर ले, तो संसार से ज़्यादातर तनाव, हिंसा और आत्महीनता खुद-ब-खुद मिट जाएँगे। अंतः, जब हम यह कहते हैं कि "योग भारत की देन है", तो यह केवल एक सांस्कृतिक गर्व का विषय नहीं, बल्कि एक मानवतावादी प्रस्ताव है — एक ऐसा प्रस्ताव जो कहता है कि "चलो, फिर से भीतर की ओर लौटें; चलो, अपने चित्त को साफ करें; चलो, आत्मा से आत्मा की बात करें।" अष्टांग योग इसी भीतर की यात्रा का वह ज़रिया है जो हमें बाहर की दुनिया में भी संतुलन, शांति और सार्थकता के साथ जीना सिखाता है।

पतंजलि ने योग को केवल शरीर या केवल मन की प्रक्रिया नहीं माना, बल्कि यह आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीर — इन सभी के संतुलित समन्वय का नाम है। योग दर्शन सांख्य दर्शन पर आधारित है, जिसमें पुरुष और प्रकृति की द्वैत सत्ता को स्वीकारते हुए, आत्मा की स्वतंत्रता (कैवल्य) को अंतिम लक्ष्य माना गया है। योग इसी लक्ष्य की ओर ले जाने वाला मार्ग है। यह मार्ग सिर्फ़ विचारों का नहीं, बल्कि व्यवहार, अनुशासन, अभ्यास और अनुभव का है। इसी क्रम में पतंजलि ने *"अष्टांग योग"* का प्रतिपादन किया, जो योग की आत्मोन्मुख यात्रा के आठ सोपान हैं।

अष्टांग योग के आठ अंग – एक क्रमिक साधना पथ

1. **यम (नैतिक अनुशासन)** – भारतीय योग परंपरा में "यम" को अष्टांग योग का प्रथम और अत्यंत महत्वपूर्ण अंग माना गया है। पतंजलि के *योगसूत्र* में कहा गया है — *"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" (योगसूत्र 2.30)* — अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह — ये पाँच यम हैं। ये किसी विशेष पंथ, जाति या देश के लिए नहीं, बल्कि सार्वभौमिक और सार्वकालिक नैतिक सिद्धांत हैं जिन्हें पतंजलि ने *"जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः"* (योगसूत्र 2.31) कहकर स्पष्ट किया है कि यम सार्वभौमिक हैं — इनका पालन हर व्यक्ति, हर समय, हर स्थान पर अनिवार्य है। दरअसल, यम जीवन की वो नैतिक ज़मीन है जिस पर योग साधना की पूरी इमारत खड़ी होती है। अगर यह आधार डगमग हो, तो साधना भी सतही और अपूर्ण रह जाती है।
    १. **अहिंसा (Non-violence)** — अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं है, बल्कि यह वाणी, विचार और भावना से भी किसी को आघात न पहुँचाने की संवेदनशीलता है। *महात्मा गांधी* ने इसे अपने

जीवन का मूल बनाया और कहा — "अहिंसा परमो धर्मः" केवल एक श्लोक नहीं, बल्कि जीवन जीने की सर्वोच्च कसौटी है। अहिंसा में वह करूणा है जो जीव मात्र को अपने जैसा मानती है। जब मन, वचन और कर्म से कोई दूसरों को क्षति नहीं पहुँचाता, वहीं से योग की सच्ची शुरुआत होती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी यह मानता है कि हिंसक विचार तनाव और मानसिक असंतुलन के मूल कारण हैं, अतः अहिंसा मानसिक शांति की दिशा में पहला क़दम है।

२. **सत्य** (Truthfulness) — सत्य का अर्थ है — जो जैसा है, उसे वैसा ही प्रकट करना; न बढ़ाना, न घटाना, न छिपाना। योगी के लिए सत्य केवल भाषण या वचन की ईमानदारी नहीं, बल्कि आत्मा की पारदर्शिता है। सत्य को लेकर पतंजलि कहते हैं — *"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्" (योगसूत्र 2.36)* — अर्थात् जो व्यक्ति सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसकी वाणी में इतनी शक्ति आ जाती है कि वह जो कहता है, वह घटित होने लगता है। यानी सत्य की साधना केवल नैतिक नहीं, आध्यात्मिक और सृजनात्मक शक्ति का भी स्रोत बन जाती है। उर्दू कहावत भी है — *"सच बोले तो फरिश्ते मदद को उतर आते हैं।"*

३. **अस्तेय** (Non-stealing) — अस्तेय का तात्पर्य है — जो हमारा नहीं है, उसे लेने की इच्छा भी न रखना। केवल वस्तु या धन की चोरी नहीं, किसी का श्रेय, समय, ध्यान या भावनाएँ चुराना भी अस्तेय का उल्लंघन है। मन में 'लोभ' की भावना भी एक प्रकार की चोरी है। *"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्" (योगसूत्र 2.37)* — पतंजलि कहते हैं कि जब साधक अस्तेय में स्थित हो जाता है, तो उसके जीवन में सभी रत्न (गुण, अवसर, सफलता) स्वयं आने लगते हैं। यह एक प्रकार की आत्म-संपन्नता है, जहाँ व्यक्ति बाहरी संग्रह से ऊपर उठकर आंतरिक संतोष और आत्मबल को अनुभव करता है।

४. **ब्रह्मचर्य** (Celibacy or Self-restraint) — ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है: इन्द्रियों पर संयम। परंतु इसका गहरा आयाम यह है कि व्यक्ति अपनी ऊर्जा को उच्छृंखल भोगों में न बहाकर उच्च साधना में नियोजित करे। 'ब्रह्मचर्य' यानी ब्रह्म (परम सत्य) में विचरण करना। *"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" (योगसूत्र 2.38)* — ब्रह्मचर्य से वीर्य

यानी आत्मबल और संकल्पशक्ति की प्राप्ति होती है। मनोविज्ञान भी स्वीकार करता है कि जो व्यक्ति संयमी होता है, उसकी मानसिक शक्ति अत्यधिक केंद्रित और प्रभावी होती है। ब्रह्मचर्य केवल सेक्सुअल कंट्रोल नहीं, बल्कि हर प्रकार की अनियंत्रित तृष्णा पर लगाम है।

५. **अपरिग्रह (Non-possession)** — इसका शाब्दिक अर्थ है: संग्रह न करना। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं, विचारों, सम्बन्धों और भावनाओं को जमा करना भी परिग्रह है। अपरिग्रह हमें स्वतंत्र बनाता है — बाहरी निर्भरता से, स्वामित्व की ग्रंथि से, और भय से। *"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः" (योगसूत्र 2.39)* — जब व्यक्ति अपरिग्रह में स्थित होता है, तो उसे अपने पूर्वजन्मों का भी ज्ञान होने लगता है। इसका गूढ़ अर्थ यह है कि जब मन संग्रह की चक्की से निकलता है, तब आत्मा का गहरा अनुभव संभव होता है। आज के उपभोक्तावादी समय में, जहाँ हर चीज़ 'और चाहिए' की मानसिकता से भरी है, वहाँ अपरिग्रह एक क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि है।

इन पाँच यमों का पालन केवल योगी का ही धर्म नहीं, बल्कि वह हर उस व्यक्ति की ज़िम्मेदारी है जो एक शांत, संयमित, और संतुलित समाज चाहता है। ये केवल नियम नहीं, बल्कि योग के नैतिक बीज हैं जो साधक के भीतर सत्य, करूणा, धैर्य और आत्मबल का वृक्ष बनाते हैं। यम — समाज के साथ हमारे व्यवहार को शुद्ध करते हैं और हमें उस योगमार्ग पर बढ़ने के योग्य बनाते हैं जो केवल आसनों का अभ्यास नहीं, बल्कि आत्मा के शुद्धिकरण की प्रक्रिया है।

2. **नियम (आत्म-अनुशासन)** – योग के पावन पथ पर अग्रसर होने के लिए जहाँ यम हमारे सामाजिक आचरण को शुद्ध करता है, वहीं *नियम* हमारी आत्मिक उन्नति की दिशा में स्वयं के साथ संबंध को निर्मल और अनुशासित करता है। पतंजलि योगसूत्र (2.32) में वर्णित पाँच नियम — *"शौच संतोष तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमाः"* — किसी बाहरी बंधन नहीं, बल्कि आंतरिक प्रेरणा और जीवन-नीति के रूप में आत्मसात किए जाने चाहिएँ। ये नियम कोई रूढ़ विधि-विधान नहीं, बल्कि ऐसे आत्म-विकास के सोपान हैं, जो साधक को आत्मदर्शन और ब्रह्मज्ञान की ओर उन्मुख करते हैं।

१. **शौच (शारीरिक और मानसिक शुद्धि)** — शौच का अर्थ केवल शरीर को स्वच्छ रखना नहीं है, बल्कि मन, वाणी और बुद्धि की पवित्रता

भी इसमें समाहित है। पतंजलि कहते हैं — *"शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः" (योगसूत्र 2.40)* — अर्थात् शौच से स्वयं के दोषों के प्रति विवेक उत्पन्न होता है और विकारयुक्त संबंधों से दूरी बनती है। मन में अगर द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध या लोभ जमा हो जाए तो वह शौचहीन मन ठीक वैसा ही होता है जैसे कीचड़ में खिला हुआ एक सुंदर कमल। इसलिए शौच केवल स्नान तक सीमित नहीं, बल्कि यह एक आंतरिक स्नान है जहाँ साधक रोज़ अपने विचारों, संकल्पों और मनोवृत्तियों को देखता है और उन्हें निखारता है। उर्दू में कहते हैं — *"दिल साफ़ हो तो आईना बन जाता है इंसान।"*

२. **संतोष (Contentment)** — संतोष वह मानसिक स्थिति है जहाँ व्यक्ति को जो मिला है, उसमें आनंद अनुभव होता है। यह न तो जड़ता है, न अकर्मण्यता — यह तो एक जीवंत स्वीकृति है कि 'जो है, वह पर्याप्त है, और जो नहीं है, उसके लिए भी मैं प्रयासरत रहूँगा लेकिन दुखी नहीं होऊँगा।' पतंजलि कहते हैं — *"संतोषादनुत्तमसुखलाभः" (योगसूत्र 2.42)* — संतोष से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है, क्योंकि इच्छाओं की आग कभी पूरी नहीं होती। आज के भौतिकतावादी दौर में, जहाँ हर चीज़ की कीमत बाज़ार तय करता है, संतोष एक क्रांतिकारी अवधारणा बन जाती है। यह आंतरिक धन है — जो किसी बैंक खाते या प्रॉपर्टी से नहीं, बल्कि आत्मा की संतुलित दृष्टि से उपजता है।

३. **तप (अनुशासन और आत्मसंयम)** — तप का अर्थ है: वह आत्म-संयम और परिश्रम, जो आत्मा के परिष्कार हेतु किया जाए। यह केवल कठिन व्रत या शरीर को कष्ट देना नहीं, बल्कि अपने कर्म, वाणी और भावनाओं को एक ध्येय के प्रति समर्पित करना है। *"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः" (योगसूत्र 2.43)* — तप के अभ्यास से शरीर और इंद्रियाँ शुद्ध होती हैं और साधक की आत्मशक्ति बढ़ती है। आज जब ध्यान भटकाव, विलासिता और त्वरित सुख के मोह में उलझ गया है, तब तप एक साधना है — खुद को तैयार करने की, कठिनाई को गले लगाने की, और लक्ष्य के लिए स्वेच्छा से सीमाएँ स्वीकार करने की। उर्दू कहावत है — *"जो जला है तपकर हीरा बना है।"*

४. **स्वाध्याय (शास्त्र और आत्मा का अध्ययन)** — स्वाध्याय का तात्पर्य है — नित्य शास्त्रों का अध्ययन और आत्मा का निरीक्षण। यह आत्ममंथन की वह प्रक्रिया है जहाँ साधक न केवल ग्रंथों से सीखता है, बल्कि उन शिक्षाओं को अपने भीतर लागू करता है। *"स्वाध्यायात् इष्टदेवतासंप्रयोगः" (योगसूत्र 2.44)* — स्वाध्याय से साधक अपनी आराध्य शक्ति से एक आत्मिक संबंध बना लेता है। स्वाध्याय कोई 'पढ़ाई' नहीं, यह 'समझने' और 'जागने' की क्रिया है। वह हर वह पाठ — जो जीवन को और गहरा, और सच्चा बनाता है — स्वाध्याय है। चाहे भगवद्गीता हो, चाहे क़ुरआन, चाहे बाइबिल या धम्मपद — हर महान ग्रंथ हमें अपने भीतर की रोशनी से जोड़ता है, अगर हम उसे श्रद्धा से आत्मसात करें।

५. **ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर में समर्पण)** — यह नियम योग के अंतिम सत्य की ओर ले जाता है — परम सत्ता में पूर्ण विश्वास और समर्पण। *"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (योगसूत्र 1.23)* — पतंजलि कहते हैं कि ईश्वरप्रणिधान स्वयं एक स्वतंत्र मार्ग है, जो साधक को समाधि तक पहुँचा सकता है। इसका आशय है कि जब साधक अहंकार, भय और नियंत्रण की भावना को त्यागकर अपने जीवन को उस ब्रह्म चेतना के हाथों सौंप देता है, तब वह भीतर से मुक्त हो जाता है। उर्दू शेर है — *"जो ख़ुदा पे यक़ीं रखे, वो हर डर से आज़ाद होता है।"* समर्पण कोई पलायन नहीं, बल्कि एक आंतरिक स्वीकार है — कि मैं अपनी शक्ति भर प्रयत्न करूँगा, लेकिन अंतिम फल पर मेरा नहीं, परम की इच्छा का अधिकार है।

नियम, दरअसल, आत्मा की बुनियादी खेती है — ये वो बीज हैं जो चरित्र, अनुशासन, संतुलन और ईश्वरीय भाव से जीवन को सुवासित करते हैं। जहाँ यम बाहरी जीवन को समरस बनाते हैं, वहीं नियम भीतरी जीवन को आत्मीय और दिव्य बनाते हैं। आज जब व्यक्ति तनाव, लालच, असंतोष और आध्यात्मिक रिक्तता से जूझ रहा है, तब योग के ये पाँच नियम एक प्रकाशस्तंभ की तरह मार्गदर्शन करते हैं — *"स्वधर्मे निधनं श्रेयः"* — स्वयं के धर्म में स्थित रहकर धीरे-धीरे आत्मा की ओर बढ़ना ही नियम का सच्चा अनुसरण है।

3. **आसन (शारीरिक स्थिरता)** – योग के अष्टांग मार्ग में *"आसन"* तीसरा चरण है, जो साधक को स्थिरता, सजगता और संतुलन की ओर ले जाता है। पतंजलि

योगसूत्र (2.46) में कहा गया है — *"स्थिरसुखमासनम्"*, अर्थात वह स्थिति जिसमें शरीर स्थिर और मन सुखपूर्वक स्थित हो, वही आसन कहलाता है। यह परिभाषा जितनी सरल प्रतीत होती है, उतनी ही गहरी है। आसन का उद्देश्य केवल शरीर को किसी मुद्रा में बाँधना नहीं है, बल्कि शरीर, मन और प्राण के बीच एक ऐसा सामंजस्य स्थापित करना है जो साधना के लिए आधारशिला बन सके। शरीर यदि चंचल, असंतुलित या असहज है, तो ध्यान, धारणा या समाधि जैसे उच्चतर अभ्यास संभव नहीं। इसलिए आसन न केवल शारीरिक अभ्यास है, बल्कि यह आत्म-स्थित होने की तैयारी है। संस्कृत में कहते हैं — *"कायस्य स्थैर्यं मनसः प्रसादः"* — शरीर की स्थिरता से मन में प्रसन्नता और शांति का उदय होता है।

आज की तेज़-रफ़्तार और तनावपूर्ण ज़िंदगी में जहाँ इंसान का शरीर लगातार थकान, दर्द, और विकृति का अनुभव करता है, वहीं योगासनों का नियमित अभ्यास एक संजीवनी बनकर सामने आता है। उर्दू में कहते हैं — *"जिस्म का सुकून, रूह की राहत का ज़रिया होता है।"* विभिन्न योगग्रंथों में ८४ लाख आसनों का उल्लेख मिलता है, जो प्राणी जगत की विविधता और लयबद्धता को दर्शाते हैं, परंतु हठयोग प्रदीपिका, घेरंड संहिता आदि ग्रंथों में कुछ विशिष्ट आसनों को ही योग के लिए अनिवार्य माना गया है। हठयोग प्रदीपिका (1.17) कहती है — *"अथासनानि कथ्यन्ते द्वादशैव यथोक्तयः"* — अर्थात् १२ मुख्य आसनों का वर्णन किया जाता है जो योग की साधना में सहायक हैं।

पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन, वज्रासन, जैसे ध्यानात्मक आसन शरीर को एक विशेष रूप में स्थिर करते हैं, जिससे रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है, प्राण का प्रवाह संतुलित रहता है और ध्यान सहज बनता है। वहीं *भुजंगासन, त्रिकोणासन, ताड़ासन, पश्चिमोत्तानासन* आदि अभ्यासात्मक आसन शारीरिक लचीलापन, रक्तसंचार और मांसपेशियों की शक्ति को बढ़ाते हैं। आधुनिक विज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि योगासन न केवल शारीरिक स्वास्थ्य सुधारते हैं, बल्कि हॉर्मोनल संतुलन, नसों की कार्यप्रणाली और मानसिक तनाव को कम करने में अत्यंत प्रभावी हैं। *AIIMS* और *Harvard Medical School* जैसी संस्थाओं ने भी योगासनों के लाभों पर शोध कर यह प्रमाणित किया है कि यह एक वैज्ञानिक जीवनशैली है। लेकिन आसन का अभ्यास केवल बाह्य अभ्यास नहीं होना चाहिए, बल्कि यह एक *आंतरिक अनुशासन* बनना चाहिए। आसन करते समय शरीर के हर हिस्से को जागरूकता से भरना, साँस की लय के साथ सामंजस्य बनाना, और अंतर्मन की शांति को अनुभव करना —

यही योगासनों की आत्मा है। *"प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्"* (योगसूत्र 2.47) — इस सूत्र में पतंजलि बताते हैं कि आसन तभी सिद्ध होता है जब उसमें प्रयास की कठोरता समाप्त हो जाए और साधक अनन्त की अनुभूति करने लगे। इसका अर्थ है कि आसन किसी प्रदर्शन या कसरत का माध्यम नहीं, बल्कि चेतना की गहराई में उतरने की प्रक्रिया है।

यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि योगासन का अभ्यास किसी प्रतियोगिता या फ़ैशन के तौर पर नहीं किया जाना चाहिए। आजकल सोशल मीडिया पर योगासन को एकरूप सौंदर्य या शरीर को मोड़ने-मरोड़ने की कला के रूप में प्रचारित किया जा रहा है, जबकि वास्तविकता यह है कि हर आसन का लक्ष्य शरीर को इतना सहज बनाना है कि साधक घंटों तक बिना विचलित हुए ध्यान की अवस्था में स्थित रह सके। उर्दू में कहा गया है — *"जिस्म को झुकाना नहीं, खुद को सँभालना है।"*

वर्तमान समय में जब जीवन शारीरिक विकारों, मोटापा, पीठ दर्द, मानसिक थकान और अनिद्रा से ग्रस्त है, तब आसनों का नियमित अभ्यास एक आश्वासन है कि प्राकृतिक और सरल साधनों से ही जीवन में स्वास्थ्य, स्थिरता और मानसिक संतुलन लाया जा सकता है। जैसे-जैसे साधक आसन में स्थिर होता है, वैसे-वैसे वह अपने विचारों, भावनाओं और प्राणशक्ति को नियंत्रित करना सीखता है। यह नियंत्रण ही आगे चलकर *प्राणायाम* और *ध्यान* के अभ्यास का आधार बनता है। अतः कहा जा सकता है कि *आसन न केवल शरीर का स्थिर अभ्यास है, बल्कि यह चेतना की तैयारी है।* यह वह आधारशिला है जिस पर योग के सभी ऊर्ध्व चरण — प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि — सुस्थापित होते हैं। *"योगः कर्मसु कौशलम्"* — इस गीता के सिद्धांत को आसनों के माध्यम से साधक अपने दैनिक जीवन में उतार सकता है, जहाँ हर क्रिया एक साधना बन जाती है और जीवन स्वयं योगमय हो उठता है।

4. **प्राणायाम (प्राण का नियंत्रण)** – योग के अष्टांग मार्ग में *प्राणायाम* वह चतुर्थ चरण है जो आसन से आगे बढ़कर साधक को आत्म-ऊर्जा के सूक्ष्म स्तर तक पहुँचने में सक्षम बनाता है। संस्कृत शब्द "प्राणायाम" दो भागों से बना है — *प्राण* (जीवन ऊर्जा) और *आयाम* (नियंत्रण या विस्तार)। अक्सर इसे केवल श्वास की एक प्रक्रिया समझ लिया जाता है, परन्तु वास्तव में यह अभ्यास जीवन शक्ति के स्रोत पर शासन पाने की एक दिव्य और वैज्ञानिक विधि है। पतंजलि योगसूत्र (2.49) में वर्णन मिलता है — *"तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः"*, अर्थात जब आसन सिद्ध हो जाए तब श्वास और प्रश्वास की गति

को नियंत्रित करना ही प्राणायाम कहलाता है। उर्दू में कहा जाता है — *"साँस सिर्फ़ हवा नहीं, रूह की हरकत है।"* और यही साँस जब सजगता से ली जाती है, तब वह साधारण प्रक्रिया न रहकर अध्यात्म की ओर एक सेतु बन जाती है। प्राण हमारे भीतर वह शक्ति है जो नाड़ी संस्थान, चित्तवृत्तियाँ, और समस्त जैविक क्रियाओं को गति देती है। जब यह प्राण असंतुलित हो जाता है, तब मन अशांत, विचार चंचल और शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। प्राचीन योग ग्रंथों जैसे हठयोग प्रदीपिका (II.1) में कहा गया है — *"चले वाते चलं चित्तं, निश्चले निश्चलं भवेत्। योगी स्थाणुत्वं आप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥"* — अर्थात जब वायु (प्राण) चंचल होता है, तब मन भी चंचल होता है, और जब प्राण स्थिर होता है, तो मन भी स्थिर हो जाता है। यही कारण है कि प्राणायाम को मनोनिग्रह और चित्तशुद्धि का सबसे कारगर साधन माना गया है।

विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो प्राणायाम केवल पारंपरिक अभ्यास नहीं, बल्कि यह न्यूरो-फिजियोलॉजी और साइकॉलॉजिकल बैलेंस का एक सशक्त उपकरण है। *AIIMS*, *Stanford University*, तथा *Harvard Medical School* जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं में हुए शोध बताते हैं कि प्राणायाम से न केवल ब्लड प्रेशर नियंत्रित होता है, बल्कि यह ब्रेनवेव्स को भी स्थिर कर देता है, जिससे मस्तिष्क शांत, केंद्रित और रचनात्मक बनता है। अवसाद, चिंता, नींद की कमी, PTSD (Post-Traumatic Stress Disorder) जैसी स्थितियों में *अनुलोम-विलोम, भस्त्रिका, कपालभाति, शीतली* आदि प्राणायाम अत्यंत प्रभावशाली पाए गए हैं।

भारतीय योग साहित्य में विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख है, जिनका अभ्यास क्रमशः शरीर को शुद्ध करने, प्राण को जागृत करने और आत्मा को परमचेतना से जोड़ने के लिए किया जाता है। *नाड़ीशोधन प्राणायाम* जहाँ इड़ा और पिंगला नाड़ी को संतुलित करता है, वहीं *भ्रामरी प्राणायाम* मस्तिष्क को गहराई से विश्राम प्रदान करता है। *कपालभाति*, जिसका अर्थ है — "मस्तिष्क की ज्योति को प्रकाशित करना", शरीर से विषैले तत्वों को बाहर निकाल कर एक शुद्ध जीवन शक्ति का संचार करता है। याद रखना चाहिए कि प्राणायाम का अभ्यास केवल बाह्य लाभ के लिए नहीं है। यह एक आध्यात्मिक अनुशासन है जो साधक को भीतर से शुद्ध करता है। उर्दू में कहते हैं — *"जब रूह में गर्द हो तो सांसों से ही वुज़ू करना होता है।"* यह वुज़ू यानी शुद्धिकरण प्राणायाम का ही कार्य है। जब साधक नियमित और विधिवत् प्राणायाम करता है, तो न केवल उसका शरीर स्वस्थ होता है, बल्कि उसका

चित्त शुद्ध, विवेक जाग्रत और आत्मबल सुदृढ़ हो जाता है। यही वह स्थिति है जब वह अगले चरण — *प्रत्याहार* की ओर सहजता से बढ़ सकता है। प्राणायाम का अभ्यास पूर्ण जागरूकता, नियमितता और संयम से किया जाना चाहिए। जैसा कि हठयोग प्रदीपिका (II.15) में वर्णन है — *"प्राणायामं ततः कुर्याद् दूषणानि च सन्त्यजेत्। शुभदेशे शुभे काले शुभचित्तेन यत्नतः॥"* — अर्थात शुभ स्थान, शुभ समय और शुभ चित्त से प्राणायाम करें तथा दूषित आचरण, भोजन व वातावरण से बचें। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणायाम को केवल शारीरिक क्रिया न समझा जाए, बल्कि उसे एक आध्यात्मिक अनुशासन, एक साधना के रूप में स्वीकार किया जाए।

अंत में यह समझना आवश्यक है कि प्राणायाम ही वह माध्यम है जिससे साधक अपनी ऊर्जा को भीतर की ओर मोड़ सकता है। जब साँस सजग होती है, तब जीवन का हर क्षण सजग होता है। यही सजगता आत्मज्ञान की ओर पहला कदम है। *"प्राणबन्धनात् मनोबन्धो, मनोबन्धनात् जीवन्मुक्तिः"* — अर्थात प्राण के बंधन से मन का बंधन होता है और मन के बंधन से ही जीवन्मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इसलिए हे साधक, साँस को हल्के में न लो — यह सिर्फ़ हवा नहीं, जीवन की भाषा है। जब इसे ध्यान से सुनोगे, तब आत्मा की आवाज़ सुनाई देगी। और वही योग का आरंभ है।

5. **प्रत्याहार (इंद्रियों का निग्रह)** – योग के अष्टांग मार्ग में *प्रत्याहार* वह पाँचवाँ अंग है जो साधक को बाह्य संसार से हटाकर भीतर की ओर मोड़ता है। संस्कृत में 'प्रत्याहार' का अर्थ होता है – "वापस खींचना", अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर आत्म के अधीन कर देना। पतंजलि योगसूत्र (2.54) में कहा गया है — *"स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः"*, यानी जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से अलग होकर चित्त के स्वरूप का अनुसरण करती हैं, तब वह प्रत्याहार कहलाता है। इस अवस्था में साधक अपनी दृष्टि, श्रवण, स्वाद, स्पर्श और गंध की प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके उन्हें एक केंद्रबिंदु — आत्मा — की ओर मोड़ता है। यही प्रक्रिया ध्यान की पूर्वपीठिका बनती है और चित्त की स्थिरता की पहली स्पष्ट झलक भी।

इन्द्रियाँ मन की सहचरी होती हैं, और मन इन्द्रियों का अधिष्ठाता। जब तक इन्द्रियाँ भोग की ओर आकृष्ट रहती हैं, तब तक मन चंचल और बिखरा हुआ रहता है। लेकिन जब इन्द्रियाँ आत्मविषयक साधना में मन के पीछे चलने लगती हैं, तब मन भी स्थिर और सशक्त बनता है। उर्दू में कहते हैं — *"जिसने नज़र को रोक लिया, उसने दिल को जीत लिया।"* प्रत्याहार इसी नज़र को रोकने का एक आध्यात्मिक

अनुशासन है। प्रत्याहार को एक *मानसिक योग* कहा जाता है। इसका अभ्यास बाहरी गतिविधियों से बचाव का नहीं, बल्कि उनकी चेतन पहचान और चयन का विज्ञान है। साधक जानता है कि स्वर, रूप, गंध, स्वाद या स्पर्श में कोई वास्तविक बंधन नहीं है — बंधन तो हमारी चेतना की उन पर निर्भरता है। प्रत्याहार हमें इस निर्भरता से मुक्त करता है। जैसे कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है, वैसे ही योगी अपनी इन्द्रियों को आत्मा के भीतर समेट लेता है। भगवद्गीता (II.58) में कहा गया है — *"यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥"*, अर्थात जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से उसी प्रकार समेट लेता है, जैसे कछुआ अपने अंगों को समेटता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

आधुनिक मनोविज्ञान में इसे *"sensory withdrawal"* कहा जाता है — जिसमें व्यक्ति बाहरी उत्तेजनाओं से खुद को कुछ समय के लिए दूर करके अपनी मानसिक ऊर्जा को पुनः संचित करता है। चिकित्सा विज्ञान भी अब इस बात को स्वीकार करता है कि इन्द्रियों की लगातार सक्रियता — विशेषकर आधुनिक युग में जब मोबाइल, स्क्रीन, और डिजिटल मीडिया हर समय हमारी इन्द्रियों को उत्तेजित कर रहे हैं — मानसिक थकान, decision fatigue, anxiety, attention-deficit और यहाँ तक कि अवसाद जैसी समस्याओं का मूल कारण बनते हैं। ऐसे में प्रत्याहार का अभ्यास, जिसे आज *डिजिटल डिटॉक्स* भी कहा जाता है, अत्यंत आवश्यक हो गया है।

प्रत्याहार न केवल मानसिक संयम, बल्कि चरित्र निर्माण और आत्मबल का मूलाधार है। यह वह द्वार है जहाँ से योग साधक "बाह्य" से "अंतर" की ओर, "प्रकृति" से "पुरुष" की ओर और "भोग" से "बोध" की ओर प्रस्थान करता है। यह कोई दमन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सूक्ष्म संकल्प और समर्पण का क्रम है। उर्दू के एक शायर ने कहा था — *"बाँध कर अपनी तमन्नाओं को देखा तो जाना, ये दरिया मुझमें था और मैं बहता चला जा रहा था।"* यही प्रत्याहार की सच्ची अनुभूति है — अपने भीतर बहते विषय-संसार को पहचानना और फिर उसे नियंत्रित करना। प्रत्याहार का अभ्यास कैसे किया जाए? इसके लिए योगशास्त्रों में वर्णन है कि पहले श्वास को नियंत्रित किया जाए (प्राणायाम), फिर आसनों में स्थिरता लाई जाए, और तत्पश्चात मन को इन्द्रियों की ओर जाने से रोका जाए। यह अभ्यास प्रारंभ में कठिन लग सकता है, क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ लंबे समय से बाह्य संसार में व्यस्त रही हैं। परंतु नियमित अभ्यास, सजगता और सतत् स्मरण से यह संभव है। *हठयोग प्रदीपिका* (4.26) में लिखा गया है — *"यदा ध्यानं लभेन्नित्यं यदा नैव चिञ्चलः। तदा प्रत्याहारसिद्धिः*

सञ्जाता मान्या भवेत्॥"— अर्थात जब ध्यान में स्थिरता आती है और चित्त चंचल नहीं रहता, तब प्रत्याहार सिद्ध होता है और योगी वंदनीय हो जाता है। सारांशतः, प्रत्याहार वह कड़ी है जो हमें आत्मानुशासन से जोड़ती है। यह नकार नहीं, बल्कि विकल्प का विज्ञान है — जहाँ हम निर्णय करते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ किसके अधीन होंगी — संसार के या आत्मा के। जब यह अधीनता आत्मा के प्रति होती है, तब योगी बाह्य आडंबर से मुक्त होकर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। *"इन्द्रियजयाद् आत्मबलं, आत्मबलाद् मोक्षः"*— अर्थात इन्द्रियों के जीतने से आत्मबल बढ़ता है और आत्मबल से मोक्ष की ओर प्रस्थान संभव होता है।

6. **धारणा (एकाग्रता)** – योग के अष्टांग मार्ग में 'धारणा' वह छठा अंग है जहाँ साधक की साधना सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, स्थूल से सूक्ष्म, और बाह्य से अंतरतम की ओर प्रवाहित होती है। संस्कृत में 'धारणा' का अर्थ है — *धृ धारणे,* अर्थात किसी एक वस्तु, विचार, मंत्र, तत्व, या स्वरूप को चित्त में स्थिर करना। पतंजलि योगसूत्र (3.1) में इसे परिभाषित किया गया है — *"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"*, यानी चित्त को किसी एक देश (स्थान या विषय) में बाँध देना ही धारणा है। यह अभ्यास ध्यान (meditation) का पूर्ववर्ती चरण है, जिसमें चित्त को इधर-उधर भटकने से रोककर एक बिंदु पर टिकाया जाता है — जैसे कोई दीपक बिना हवा के शांतिपूर्वक एक दिशा में जलता रहे। धारणा में मनुष्य अपने चित्त को बाह्य इन्द्रिय विषयों से हटा कर एकाग्रता की स्थिति में लाता है। यह एक साधना है जो केवल मौन बैठने से नहीं आती, बल्कि सतत अभ्यास, अनुशासन और अंतर्दृष्टि की मांग करती है। उर्दू में कहा गया है — *"जिसने अपने ख्यालातों को एक लकीर में कर लिया, उसने कायनात को अपनी सोच से जीता।"* यही धारणा का मर्म है — बिखरे हुए विचारों को एक सूत्र में पिरो देना। जब मन एक बिंदु पर टिका रहता है, तब वह ऊर्जा का स्रोत बनता है; और जब चित्त उसी बिंदु पर ठहरने लगता है, तो आत्मा में उस तत्व का प्रतिरूप प्रकट होने लगता है।

धारणा के अभ्यास में हम किसी मंत्र (जैसे ॐ), किसी ज्योति, किसी चक्र (जैसे आज्ञा चक्र या अनाहत चक्र), किसी दैविक स्वरूप, या केवल श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केंद्रित करते हैं। प्रारंभ में मन इधर-उधर भागता है — *"मन चंचल, वायु समाना"*, परंतु जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है, वैसे-वैसे चित्त की चंचलता घटती जाती है। आधुनिक विज्ञान ने भी यह सिद्ध किया है कि नियमित एकाग्रता अभ्यास (Focused Attention Meditation) से *prefrontal cortex* अधिक सक्रिय होता है, जिससे निर्णय क्षमता, स्मरण शक्ति और मानसिक शांति में वृद्धि होती है। न्यूरोप्लास्टिसिटी

के सिद्धांत के अनुसार, धारणा जैसे अभ्यास से मस्तिष्क में सकारात्मक परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

धारणा का अभ्यास हमें यह सिखाता है कि मन हमारा सेवक है, स्वामी नहीं। आज के युग में जब ध्यान भटकाना (Distraction) एक वैश्विक महामारी बन गया है — सोशल मीडिया, स्क्रीन, सूचनाओं की बाढ़, और क्षणिक संतोष की दौड़ — ऐसे समय में धारणा आत्म-स्थायित्व और स्थायित्व का वरदान है। यह हमें हमारे भीतर के मौन, हमारी संकल्प शक्ति और हमारी मानसिक ऊर्जा से जोड़ता है। भगवद्गीता (6.19) में अर्जुन को श्रीकृष्ण कहते हैं — *"यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥"* — जैसे निर्वात में दीपक की लौ न डोलती हो, वैसे ही ध्यान में स्थित योगी का चित्त अडोल रहता है। धारणा का अभ्यास शुरू में कठिन प्रतीत हो सकता है, क्योंकि मन का स्वभाव ही है भागना। लेकिन धीरे-धीरे जब हम उसके साथ मित्रवत व्यवहार करने लगते हैं, जब हम उसे बार-बार स्नेहपूर्वक उसी विषय पर केंद्रित करते हैं, तब वह सजग होकर उसी में रमता है। यह अभ्यास केवल ध्यान कक्ष में नहीं होता — जीवन के हर क्षण में धारणा की आवश्यकता है। पढ़ाई, कला, विज्ञान, रिश्ते, साधना — हर जगह एकाग्रता ही तो मूल है। उर्दू शायरों ने कहा है — *"इश्क़ भी वही कामयाब होता है जो फ़िक्र में एकनिष्ठ हो"*, और यही बात आत्मसाधना पर भी लागू होती है।

धारणा से हमारी आत्म-चेतना जागृत होती है, क्योंकि हम अपने ध्यान केंद्र को धीरे-धीरे केवल एक बिंदु नहीं, बल्कि उस बिंदु के पार की सत्ता पर केंद्रित करने लगते हैं। जब हम किसी दैविक स्वरूप पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तब वह मात्र प्रतिमा नहीं रह जाती, वह एक चेतन अनुभूति बन जाती है। धारणा के माध्यम से हम उस सत्ता में प्रवेश करते हैं — जो स्थायी है, जो शाश्वत है, जो हममें और हमसे परे दोनों में है। इसलिए, अष्टांग योग में धारणा वह सेतु है जो हमें *ध्यान* की ओर ले जाती है — ध्यान जिसमें चित्त उसी बिंदु पर लगातार प्रवाहित रहता है, और अंततः समाधि में परिणत हो जाता है। पतंजलि के शब्दों में — *"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"* (3.2), यानी जिस स्थान पर धारणा की एकसूत्रता टिक जाती है, वही ध्यान बन जाती है। इस प्रकार, धारणा केवल एक अभ्यास नहीं, यह जीवन जीने की कला है — जहाँ हम अपने भीतर के केंद्र को पहचानते हैं, उस पर टिकते हैं, और फिर उससे जुड़कर सारी दुनिया को एक नये भाव से देखते हैं। जब मन स्थिर होता है, तब ही आत्मा की आहट सुनाई देती है।

7. **ध्यान (ध्यानाभ्यास)** – योग के अष्टांग पथ में *ध्यान* वह सातवाँ अंग है, जहाँ साधक अपने चित्त को निरंतर, अविचल और अव्यवहित रूप से एक ही बिंदु, तत्व या स्वरूप में लीन कर देता है। पतंजलि योगसूत्र (3.2) में ध्यान की परिभाषा दी गई है — *"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"*, अर्थात् जहाँ धारणा की एकसूत्रता टिक जाती है और चित्त उसी विषय में निरंतर प्रवाहित होता है, वही ध्यान है। यह वह अवस्था है जब साधक मन की चंचलता को पार कर पूर्ण स्थिरता में प्रवेश करता है, जहाँ विचारों की आवाज़ मंद पड़ जाती है और आत्मा की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देने लगती है। ध्यान कोई क्रिया नहीं, एक स्थिति है; यह कोई प्रयत्न नहीं, बल्कि प्रयत्न का अंत है।

ध्यान में मनुष्य एक ऐसे मौन से साक्षात्कार करता है जो शब्दों से परे है। जैसे कोई नदी अनेक घाटों से बहती हुई अंततः समुद्र में विलीन हो जाती है, वैसे ही ध्यान में सभी विचार, भावनाएँ, कामनाएँ अंततः आत्मा के महासागर में मिल जाते हैं। ध्यान साधक को आत्मदर्शन की ओर ले जाता है। भगवद्गीता (6.20-21) में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं — *"यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥"* — अर्थात् ध्यान की वह अवस्था है जहाँ योग के अभ्यास से चित्त शांत होता है और आत्मा, आत्मा में ही रमने लगती है। यही वह क्षण है जब साधक बाह्य संसार को भूलकर अंतर्जगत के प्रकाश से आलोकित होता है। ध्यान का अभ्यास किसी विशेष धर्म, जाति या सम्प्रदाय की सीमा में बंधा नहीं है। यह तो हर मानव की सहज आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। चाहे बुद्ध की विपश्यना हो, महावीर की ध्यान साधना, ईसा मसीह की प्रार्थनाओं का मौन, या सूफियों का *समा* — हर परंपरा ने ध्यान को आत्मानुभूति की कुंजी माना है। उर्दू शायरी में भी ध्यान की परछाईं अक्सर दिखती है — *"दिल की गहराई में इक नूर सा ठहरता है, जब भी मैं ख़ुद से मिलता हूँ, ध्यान उतरता है।"*

आधुनिक विज्ञान भी अब ध्यान की महत्ता को स्वीकार कर चुका है। न्यूरोसाइंस के क्षेत्र में हुए अनुसंधानों से यह प्रमाणित हुआ है कि ध्यान मस्तिष्क में *gray matter* को बढ़ाता है, *amygdala* की सक्रियता को घटाता है (जो तनाव और भय का केंद्र है), और *prefrontal cortex* को सुदृढ़ करता है जो निर्णय लेने की शक्ति से जुड़ा है। ध्यान न केवल मानसिक स्वास्थ्य का पोषक है, बल्कि यह हृदयगति, रक्तचाप, और रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी संतुलित करता है। आज *Mindfulness Meditation*, *Transcendental Meditation*, और *Loving Kindness Meditation* जैसे रूपों ने ध्यान को वैश्विक मंच पर स्थापित कर दिया है। परन्तु

पतंजलि का ध्यान इन आधुनिक विधियों से कहीं अधिक गहन और सूक्ष्म है। वह ध्यान केवल विश्राम नहीं, आत्मान्वेषण है। इसमें साधक आत्मा की आँखों से स्वयं को देखता है — *"स्वात्मदर्शनं ध्यानम्"*। यह ध्यान तब घटित होता है जब साधक न केवल इन्द्रियों से विरत होता है, बल्कि विचारों से भी परे चला जाता है। यह वह क्षण है जब "मैं" और "मेरा" का भेद मिट जाता है — *"तद्रूप स्वरूपेऽवस्थानम्"* (1.3)। ध्यान में कोई क्रिया नहीं होती, केवल उपस्थिति होती है; न समय होता है, न दिशा — केवल अनुभव की सघनता होती है।

ध्यान का अभ्यास आरंभ में कठिन प्रतीत हो सकता है। मन हर क्षण कहीं भागता है — कभी भूत में, कभी भविष्य में। लेकिन जैसे कोई माँ अपने बच्चे को बार-बार बुलाकर गोद में बिठाती है, वैसे ही साधक को अपने चित्त को बार-बार एक विषय पर लाकर बैठाना होता है। यह एक प्रेमपूर्ण अनुशासन है — न ज़बरदस्ती, न निषेध — बस स्नेह और एकनिष्ठता। कबीर कहते हैं — *"मन लागो मेरो यार फकीरी में।"* ध्यान वही फकीरी है जहाँ अंततः "मैं" मिटता है और "वह" प्रकट होता है। ध्यान का अभ्यास केवल योगमुद्रा में बैठने तक सीमित नहीं है। जीवन के हर कार्य में ध्यान संभव है — खाना खाते समय, चलते समय, पढ़ते समय, यहाँ तक कि दूसरों से संवाद करते समय भी। जब हम पूर्णतः जागरूक होते हैं, उपस्थित होते हैं — वही ध्यान है। श्री अरविंद कहते थे — *"Be conscious in every breath; then every act becomes yoga."* ध्यान केवल किसी ध्येय पर टिकना नहीं है, बल्कि उस टिकाव में विलीन हो जाना है — जहाँ विषय, ध्याता और ध्यान — तीनों एक हो जाएँ। इस प्रकार ध्यान वह सेतु है जो साधक को समाधि की ओर ले जाता है — अंतिम और सर्वोच्च अवस्था, जहाँ आत्मा, परमात्मा में अवस्थित हो जाती है। ध्यान में ही वह मौन उतरता है जो सारी व्याख्याओं से परे है — जहाँ शब्द समाप्त होते हैं और अनुभूति आरंभ होती है।

8. **समाधि (आत्मा का परम विश्रांति में प्रवेश)** – योग दर्शन की चरम परिणति है *समाधि*, जिसे पतंजलि ने योगसूत्र में 'ध्यान' के बाद की वह अवस्था बताया है जहाँ साधक आत्मा में इस तरह विलीन हो जाता है कि 'स्व' और 'पर' का भेद मिट जाता है। *"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"*— यही वह क्षण है जहाँ दृष्टा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। न इच्छाएँ रहती हैं, न विकार; न अहं का चिन्ह रहता है, न चित्त की लहरें। यह वह परम अवस्था है जिसे वैदिक ऋषियों ने *"ब्रह्मसाक्षात्कार"* कहा, संतों ने *"प्रेम समाधि"*, और योगियों ने *"कैवल्य"* — अर्थात् परम स्वतंत्रता। समाधि में न कोई भाव शेष रहता है, न

भोग; केवल *निर्विकल्प अनुभूति* होती है, जहाँ आत्मा अपने *शुद्ध साक्षीभाव* में प्रतिष्ठित हो जाती है।

पतंजलि समाधि को दो प्रमुख भागों में विभाजित करते हैं — *सविकल्प समाधि* और *निर्विकल्प समाधि*। सविकल्प समाधि में साधक का चित्त किसी विशेष विषय, ध्वनि, मंत्र, या तत्व पर केंद्रित रहता है; ध्यान इतना गहन हो जाता है कि साधक उस विषय से एकाकार हो जाता है। लेकिन अभी 'विकल्प' अर्थात् विचार की सूक्ष्म तरंगें बची रहती हैं। जबकि निर्विकल्प समाधि में वह विचार-संवेदना भी लुप्त हो जाती है — न विषय बचता है, न ध्याता, न ध्यान। जैसे किसी दीपक की लौ बिना हवा के स्थिर हो जाती है, वैसे ही साधक का चित्त पूर्ण रूप से स्थिर हो जाता है — न कोई भीतर, न कोई बाहर — केवल *तत्त्वमसि* का अनुभव, केवल *अहं ब्रह्मास्मि* का प्रकाश। यह वही अवस्था है जिसे सूफी फकीर *फ़ना फ़िल्लाह* कहते हैं, बौद्ध परंपरा में *निर्वाण*, और संत कवियों ने *सच्चा समाधि रूप* कहा है।

समाधि में शरीर तो सांस ले रहा होता है, लेकिन साधक उससे परे जा चुका होता है। यह वह अंतःविलय है जहाँ आत्मा ब्रह्म के साथ लयबद्ध हो जाती है — *"यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्, तदा सर्वगतम् ज्ञानम् आत्मन्येव प्रविलीयते"* (गीता 14.14)। ध्यान जहां साधक को चेतना के तल तक ले जाता है, वहीं समाधि उसे चेतना के मूल स्रोत तक पहुँचा देती है। यह किसी साधन या प्रयत्न का परिणाम नहीं, बल्कि *अनुग्रह* की अवस्था है। योगी केवल तैयार करता है अपना चित्त, लेकिन समाधि का अनुभव एक दिव्य प्रसाद की भाँति घटित होता है। समाधि की अवस्था में न तो बाहरी संसार का कोई आकर्षण शेष रह जाता है, न ही भीतर किसी प्रकार का मोह या माया। यह *वैराग्य* और *विवेक* के पूर्ण परिपाक की दशा होती है। यहाँ साधक को आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं लगता — जैसे बूंद सागर में गिरकर सागर हो जाती है, वैसे ही साधक परम चेतना में विलीन हो जाता है। कबीर ने इसे गाया था — *"जो ब्रह्मांड में, सोई पिंड में, खोज ले रे भाई। पिंड ही में ब्रह्म छुपा है, जान लिया तो पाई।"* समाधि में न केवल आत्म-प्राप्ति होती है, बल्कि *सर्व-स्वरूपता* का बोध होता है। योग की भाषा में यह स्थिति *कैवल्य* कहलाती है — जहाँ चित्त की समस्त वृत्तियाँ निवृत्त होकर पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान अब इस अवस्था को *peak experience*, *superconscious state*, या *self-transcendence* जैसे नामों से समझने का प्रयास कर रहा है। किंतु कोई भी वैज्ञानिक भाषा उस अनुभूति की थाह नहीं पा सकती जो समाधि में घटित होती है। वहाँ शब्द नहीं पहुँचते, विचार रुक जाते हैं, केवल मौन

बचता है — *"यत्र वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह"* (तैत्तिरीय उपनिषद्)। समाधि में जो शांति प्राप्त होती है वह केवल विश्राम की नहीं, बल्कि पूर्ण आत्मविलय की होती है। इसे पाने के लिए वर्षों की तपस्या, साधना, ब्रह्मचर्य और अंतःकरण की निर्मलता अपेक्षित है।

समाधि कोई स्वप्न नहीं, एक जीवंत यथार्थ है जिसे शास्त्रों ने प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। गुरु गोविंद सिंह से लेकर स्वामी विवेकानंद, महर्षि रमण और अरविंद जैसे महान आत्माओं ने इस अवस्था का अनुभव किया और बताया कि समाधि केवल एकांत में बैठने की नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षण को *साक्षी भाव* में जीने की कला है। समाधि केवल शिखर नहीं, एक दिशा है — जहाँ जीवन एक उत्सव बन जाता है, जहाँ भीतर और बाहर के द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं, और साधक साक्षात् 'शिव' बन जाता है। अंततः यही कहा जा सकता है कि समाधि अष्टांग योग की चरम सिद्धि है — *जीवन का वह शिखर जहाँ चित्त शांत होता है, आत्मा प्रकाशित होती है और योगी ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।*

योग – बाह्य से अंतः की यात्रा

अष्टांग योग कोई सामान्य शारीरिक व्यायाम या धार्मिक कर्मकांड नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को — शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक स्तर पर — शुद्ध करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पतंजलि द्वारा वर्णित यह योग पद्धति यम और नियम जैसे बाह्य अनुशासनों से आरम्भ होकर अंततः समाधि जैसी गूढ़ और दिव्य अवस्था तक पहुँचती है। इस क्रमिक साधना में व्यक्ति केवल शरीर और इंद्रियों का ही परिष्कार नहीं करता, बल्कि वह धीरे-धीरे अपने वास्तविक स्वरूप की ओर अग्रसर होता है — जहाँ आत्मा, ब्रह्म और विश्व-चेतना एकरस हो जाते हैं। यह यात्रा बाहर से भीतर की ओर, और फिर भीतर से अनंत की ओर जाने वाली वह गाथा है जिसे वैदिक ऋषियों ने *"अन्तर्नाद"*, *"चित्तवृत्तिनिरोध"*, और *"कैवल्य"* के रूप में अनुभव किया।

वर्तमान समय में जब जीवन भागदौड़, तनाव, विकर्षण, मानसिक थकावट और मूल्यहीनता से भरता जा रहा है, तब अष्टांग योग एक आंतरिक अनुशासन बनकर प्रकट होता है। यह केवल शरीर को लचीला या मन को शांत करने का साधन नहीं, बल्कि जीवन के उद्देश्य को समझने का माध्यम है। जब व्यक्ति यम — अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह — का अभ्यास करता है, तो वह समाज के प्रति अपना नैतिक कर्तव्य निभाता है। ये मूल्य केवल बाहरी अनुशासन नहीं, बल्कि आंतरिक पवित्रता के बीज हैं। यही बीज जब नियमों की — शौच, संतोष, तप,

स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान — भूमि में बोए जाते हैं, तब साधक का आत्मबल सशक्त होता है और वह स्वयं के प्रति उत्तरदायी बनता है।

इस अनुशासित जीवन की देह और चित्त दोनों की स्थिरता के लिए *आसन* एक साधन बनता है — जहाँ शरीर न केवल रोग-मुक्त होता है, बल्कि वह *ध्यान* और *प्राणायाम* के योग्य हो जाता है। प्राणायाम न केवल श्वास पर नियंत्रण है, बल्कि वह *प्राणशक्ति* को दिशा देने की विद्या है। यह जीवन ऊर्जा के संचय, संरक्षण और प्रवाह का विज्ञान है, जो आधुनिक चिकित्सा जगत के लिए भी रहस्यपूर्ण किंतु कारगर उपाय बनकर उभरा है। इन चार चरणों के बाद जो तीन अंग आते हैं — प्रत्याहार, धारणा और ध्यान — वे सीधे चित्त और आत्मा के संसार से सम्बंधित हैं। यह आत्म-नियंत्रण, आत्म-केन्द्रण और आत्म-चिंतन की वह श्रृंखला है, जो अंततः समाधि में जाकर समाप्त होती है — एक ऐसी अवस्था जहाँ साधक *आत्मा* में स्थित होकर *परमात्मा* के साथ तादात्म्य अनुभव करता है।

आज के दैनिक जीवन में, अष्टांग योग एक प्रैक्टिकल गाइड बन सकता है। उदाहरण के लिए, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में यदि विद्यार्थियों को यम-नियम के आधार पर नैतिक शिक्षा, आसनों और प्राणायाम के माध्यम से शारीरिक और मानसिक स्थिरता, तथा ध्यान द्वारा आत्म-अनुशासन सिखाया जाए, तो एक नई पीढ़ी तैयार हो सकती है जो ज्ञानवान, संयमी और शांतचित्त हो। नौकरी-पेशा लोग जो रोज़ाना तनाव, दबाव और समय-सीमा से जूझते हैं, उनके लिए ध्यान और प्राणायाम एक मानसिक रिफ्रेशर के रूप में कार्य कर सकते हैं। गृहस्थ जीवन में, यदि पति-पत्नी यम-नियम और ध्यान की विद्या अपनाएँ, तो पारिवारिक जीवन अधिक सहयोगपूर्ण, करुणामय और सुदृढ़ बन सकता है।

आधुनिक चिकित्सा भी इस बात को स्वीकारने लगी है कि मानसिक रोगों, चिंता, अवसाद और उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों में योग — विशेषतः अष्टांग योग के अंग — प्रभावी दवा की तरह कार्य करते हैं। पश्चिमी चिकित्सा पद्धति जहाँ लक्षणों का इलाज करती है, वहीं योग उसके मूल कारण — चित्त की विक्षिप्तता और अनियमित ऊर्जा प्रवाह — को संबोधित करता है। ध्यान और समाधि की अवस्था में चित्त में जो *गामा वेव्स* उत्पन्न होती हैं, वे मस्तिष्क को पुनः सक्रिय और स्फूर्तिदायक बनाती हैं। इससे आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता और सृजनशीलता में आश्चर्यजनक वृद्धि देखी गई है।

यदि हम गहराई से देखें तो अष्टांग योग एक *संस्कृति* है — यह एक विशेष प्रकार का जीवनदर्शन है जो व्यक्ति को 'मैं' से 'हम' की ओर ले जाता है। जहाँ भोग

की प्रवृत्ति 'मुझे चाहिए' से प्रेरित होती है, वहीं योग की साधना *'मैं क्या दे सकता हूँ'* से शुरू होती है। यही कारण है कि योगी अहिंसा, अपरिग्रह, और संतोष को केवल नियम नहीं, बल्कि आत्मा का स्वभाव बनाते हैं। यह साधना धीरे-धीरे व्यक्ति को इस स्तर तक ले जाती है जहाँ न वह दूसरों से द्वेष करता है, न स्वयं से मोह। वह 'साक्षी' हो जाता है — *द्रष्टा,* जो जीवन को देखता है, समझता है, स्वीकार करता है — लेकिन उसमें बंधता नहीं। अष्टांग योग एक दिव्य सेतु है — जो प्राचीन ऋषियों की *तपश्चर्या* और आज के मनुष्य की *प्रासंगिक आवश्यकताओं* के बीच संतुलन बनाता है। यह साधना हमें एक ऐसे जीवन की ओर ले जाती है जहाँ विचार शुद्ध हों, व्यवहार सात्विक हो, और उद्देश्य लोकहितकारी हो। यह योग केवल एक पद्धति नहीं, एक *संस्कृति* है — *साक्षात् जीवन की साधना,* जिसमें मनुष्य अपने भीतर के ईश्वर से जुड़ता है।

अष्टांग योग की महत्ता केवल आध्यात्मिक साधना या धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रही, बल्कि आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान ने भी इसे एक प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति और मानसिक स्वास्थ्य सुधारक के रूप में स्वीकार किया है। विगत कुछ दशकों में भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR), अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS), और राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य एवं स्नायु विज्ञान संस्थान (NIMHANS) जैसी शीर्ष संस्थाओं ने विभिन्न शोधों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि अष्टांग योग के नियमित अभ्यास से न केवल मानसिक तनाव और अवसाद में कमी आती है, बल्कि यह शारीरिक रोगों के उपचार में भी एक सहायक प्रणाली बन गया है। सबसे पहले, योग के प्रभाव को **तनाव हार्मोन – कॉर्टिसोल (Cortisol)** के सन्दर्भ में देखा गया। कई शोध यह दर्शाते हैं कि अष्टांग योग में प्रतिदिन यम-नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान और धारणा के अभ्यास से शरीर में कॉर्टिसोल का स्तर नियंत्रित होता है। कॉर्टिसोल वह हार्मोन है जो शरीर को "फाइट या फ्लाइट" मोड में लाता है, लेकिन यदि यह अधिक मात्रा में बना रहे, तो यह चिंता, अवसाद, उच्च रक्तचाप और नींद संबंधी विकारों का कारण बन सकता है। योग के अभ्यास से इसकी मात्रा में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। दूसरे, **सिरोटोनिन (Serotonin)** और **डोपामिन (Dopamine)** जैसे न्यूरोट्रांसमीटरों का स्तर, जो प्रसन्नता और आत्मसंतोष से जुड़े होते हैं, योग के अभ्यास से बढ़ता है। AIIMS और ICMR द्वारा किए गए अध्ययनों में यह पाया गया है कि अष्टांग योग की धारणा, ध्यान और समाधि जैसी प्रक्रियाएँ मस्तिष्क में उन न्यूरोकेमिकल्स को उत्तेजित करती हैं जो *"feel-good hormones"* के रूप में जाने जाते हैं। यही कारण

है कि योग-प्रशिक्षित व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक शांत, प्रसन्न और संतुलित मनोदशा में पाए जाते हैं। तीसरे, अष्टांग योग का प्रभाव **हृदय, फेफड़े और तंत्रिका तंत्र** पर भी देखा गया है। प्राणायाम से हृदय की धड़कनों की गति नियमित होती है, ऑक्सीजन का आदान-प्रदान प्रभावी होता है, और फेफड़े अधिक कार्यशील बनते हैं। इससे शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। *Heart Rate Variability (HRV)*, जो हृदय के स्वास्थ्य का एक सूचक है, योग करने वाले व्यक्तियों में उच्चतर पाया गया है। NIMHANS के मनोचिकित्सकों ने भी पाया कि अष्टांग योग तनावजनित मानसिक विकारों जैसे PTSD, OCD और General Anxiety Disorder में दवा के साथ एक उत्कृष्ट अनुपूरक साधन बनकर उभरा है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, योग न केवल IQ (बौद्धिक बुद्धिमत्ता) बल्कि **EQ (भावनात्मक बुद्धिमत्ता)** को भी प्रभावित करता है। यम और नियम जैसे नैतिक और आत्मनियंत्रण के अंग व्यक्ति को आत्मानुशासित बनाते हैं। जब व्यक्ति ब्रह्मचर्य, अहिंसा, संतोष, ईश्वरप्रणिधान जैसे मूल्यों को अपने जीवन में उतारता है, तो वह स्वाभाविक रूप से अधिक सहृदय, सहिष्णु और संवेदनशील बनता है। यही भावनात्मक संतुलन जीवन की जटिल परिस्थितियों को सहजता से स्वीकारने और उनमें सकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया देने की क्षमता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, अनेक न्यूरोसाइंटिफिक रिसर्च में यह पाया गया है कि नियमित ध्यान और समाधि से **मस्तिष्क की ग्रे मैटर (Gray Matter)** की मोटाई बढ़ती है, विशेषतः prefrontal cortex (निर्णय और विचार के केंद्र) में, जिससे एकाग्रता, निर्णय क्षमता और स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है। M.R.I. और EEG स्कैन में ध्यान करते समय मस्तिष्क में *गामा वेव्स* और *अल्फा वेव्स* की उच्च सक्रियता देखी गई है — ये वे तरंगें हैं जो अत्यधिक जागरूकता और शांत अवस्था को दर्शाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग, जो शुद्ध आध्यात्मिक साधना के रूप में विख्यात है, अब आधुनिक विज्ञान द्वारा भी मान्य और प्रमाणित हो चुका है। यह योग केवल आत्मा की खोज नहीं, बल्कि एक समग्र स्वास्थ्य पद्धति है — जहाँ तन, मन और मस्तिष्क तीनों का समवेत उत्थान होता है। वर्तमान जीवनशैली में जहाँ जीवन भागमभाग, तनाव, असंतुलन और अनिश्चितता से भरा है, वहाँ अष्टांग योग एक ऐसी शरणस्थली है जो व्यक्ति को पुनः उसकी जड़ों, मूल्यों और आत्मिक शक्ति से जोड़ता है।

अष्टांग योग केवल किसी साधु-संन्यासी की साधना नहीं, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र — चाहे वह शिक्षा हो या गृहस्थ जीवन, कार्यालय हो या कला का क्षेत्र

— में व्यावहारिक मार्गदर्शन और आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है। पतंजलि के योगदर्शन में जो आठ अंग प्रस्तुत किए गए हैं — यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि — वे न केवल आध्यात्मिक प्रगति के लिए हैं, बल्कि जीवन के विविध आयामों में मानसिक स्पष्टता, नैतिकता और व्यवहारिक संतुलन बनाए रखने के लिए भी अत्यंत उपयोगी हैं।

विद्यार्थियों के लिए, अष्टांग योग एक दिव्य वरदान की तरह है। आज जब विद्यार्थियों पर पढ़ाई, परीक्षा, प्रतियोगिता और भविष्य की चिंता जैसे तनाव हावी रहते हैं, तब योग उनके लिए मनोबल और एकाग्रता का स्रोत बनता है। 'स्वाध्याय' (नियम का एक अंग) उन्हें आत्म-अवलोकन और अध्ययन के प्रति सजग बनाता है। 'धारणा' अभ्यास से चित्त एकाग्र होता है और मन में स्थायित्व आता है, जिससे पढ़ाई में रुचि और स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। प्राणायाम और ध्यान से परीक्षा-पूर्व मानसिक तनाव कम होता है, और शारीरिक थकान से मुक्ति मिलती है। 'अहिंसा' और 'सत्य' जैसे यम विद्यार्थियों में नैतिक अनुशासन और आत्मसंयम की भावना विकसित करते हैं। 'स्थिरसुखमासनम्' की भावना से आसन अभ्यास शरीर को स्फूर्त और स्थिर बनाए रखता है, विशेषकर रीढ़ की लचीलापन विद्यार्थियों के लिए अत्यंत लाभकारी है, जो लंबे समय तक बैठकर अध्ययन करते हैं।

गृहस्थ जीवन में, जहाँ संबंध, दायित्व, आर्थिक तनाव और सामाजिक अपेक्षाओं का भारी दबाव रहता है, वहाँ अष्टांग योग आंतरिक शांति और सामंजस्य बनाए रखने में सहायता करता है। गृहस्थ को भौतिक और आत्मिक संतुलन बनाए रखना होता है — यहाँ 'प्रत्याहार' का अभ्यास बहुत उपयोगी है, जो व्यक्ति को अपनी असंयमित इच्छाओं, लालसाओं और भोगों से विमुख कर आत्मनियंत्रण की ओर ले जाता है। यम के रूप में 'अहिंसा' और 'सत्य' वैवाहिक संबंधों में पारस्परिक विश्वास को सुदृढ़ करते हैं। नियमित ध्यान और प्राणायाम मन की व्यग्रता और तनाव को शांत करते हैं, जिससे दांपत्य जीवन अधिक सौहार्दपूर्ण बनता है। 'संतोष' और 'ईश्वरप्रणिधान' गृहस्थ को जीवन की अनिश्चितताओं में धैर्य और श्रद्धा प्रदान करते हैं।

कार्यालयों और व्यवसायिक जगत में भी योग की आवश्यकता कम नहीं है। प्रतिस्पर्धा, लक्ष्य की पूर्ति, समयबद्धता और व्यक्तिगत जीवन का दबाव अक्सर मनुष्य को चिड़चिड़ा, अशांत और अनिद्राग्रस्त बना देता है। ऐसे में अष्टांग योग में निहित 'ध्यान' और 'धारणा' नेतृत्व क्षमता, निर्णय शक्ति और मानसिक स्पष्टता को बढ़ाते हैं। वैज्ञानिक शोधों में पाया गया है कि जो व्यक्ति नियमित योगाभ्यास करता

है, उसकी productivity अधिक होती है और उसका मानसिक स्वास्थ्य भी बेहतर होता है। 'सत्य' और 'अस्तेय' जैसे यम व्यवसायिक नैतिकता को सशक्त बनाते हैं, जिससे कार्यस्थल पर पारदर्शिता और विश्वास का वातावरण निर्मित होता है। समाधि की स्थिति आधुनिक मनोविज्ञान में *"Flow State"* कही जाती है — यह वह मनोदशा है जब व्यक्ति पूर्णतः अपने कार्य में तल्लीन हो जाता है, और कार्य की गुणवत्ता और सृजनशीलता चरम पर होती है।

कलाकारों, रचनाकारों, लेखकों और संगीतकारों के लिए अष्टांग योग अंतःप्रेरणा और अंतर्दृष्टि का अमूल्य स्रोत है। 'ध्यान' से उनकी एकाग्रता गहराती है, और 'प्रत्याहार' उन्हें बाहरी विकर्षणों से मुक्त कर अंतर्मन से संवाद करने की शक्ति देता है। कलाकार के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह अपनी रचना में आत्मा का समावेश करे — इसके लिए यम में वर्णित 'अहिंसा' और 'संतोष' अत्यंत उपयोगी होते हैं। रचनात्मकता कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म ऊर्जा है जो तब बहती है जब चित्त शांत, अंतर्मुख और शुद्ध होता है — और यही स्थिति अष्टांग योग के अभ्यास से संभव होती है।

आध्यात्मिक साधकों और seekers के लिए अष्टांग योग तो स्वयं मोक्ष की राह है। यह उनके लिए केवल साधन नहीं, बल्कि साध्य है। 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि' क्रमशः आत्मा की गहराइयों में उतरने की सीढ़ियाँ हैं। साधक जब 'ब्रह्मचर्य' और 'ईश्वरप्रणिधान' जैसे नियमों का पालन करता है, तब उसका जीवन ऋषियों के जीवन की तरह संयमित और दिव्य हो जाता है। धीरे-धीरे वह "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" की स्थिति में पहुँचता है — जहाँ आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाती है। वहाँ न कोई द्वंद्व होता है, न भोग की चाह; केवल शांति, आनंद और परिपूर्णता होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अष्टांग योग केवल एक पौराणिक या धार्मिक साधना नहीं, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में व्यावहारिक, उपयोगी और आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करता है। आज के युग में जब हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में असंतुलन, चिंता और उलझन का अनुभव कर रहा है, तब अष्टांग योग वह दीया है जो व्यक्ति को फिर से अपनी आत्मा से जोड़ता है, जीवन को सार्थक बनाता है और संतुलन की ओर ले जाता है। यह योग केवल व्यायाम नहीं, यह दर्शन है — जीवन दर्शन।

योग केवल आसनों की शृंखला, प्राणायाम की विधियाँ या ध्यान की मुद्रा मात्र नहीं है; यह एक **जीवन दृष्टि** है, एक **आंतरिक अनुशासन** है, जो व्यक्ति को बाह्य जगत की चकाचौंध से हटाकर अपने भीतर की दुनिया में उतरने का निमंत्रण देता है।

पतंजलि के योगदर्शन में वर्णित अष्टांग योग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन, संयम और स्फूर्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह एक ऐसी समग्र प्रणाली है जो शरीर, मन और आत्मा तीनों को साधती है और व्यक्ति को आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करती है। आज जब जीवन भाग-दौड़, प्रतिस्पर्धा, तनाव और आत्मविस्मृति से भरा हुआ है, योग एक **अंदरूनी क्रांति** बनकर उभरता है। यह हमें न केवल शारीरिक रूप से सशक्त करता है, बल्कि मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और आत्मबल भी प्रदान करता है। यम-नियम जैसे नैतिक मूल्य जीवन को मर्यादा और शुद्धता से भरते हैं, जबकि ध्यान और समाधि व्यक्ति को आत्मा के निकट लाते हैं। इस प्रकार, योग न तो केवल सन्यासियों का पथ है, न ही किसी विशेष पंथ का अनुशासन, बल्कि यह प्रत्येक इंसान की **भीतर की खोज का शाश्वत साधन** है।

वर्तमान विज्ञान और मनोविज्ञान भी अब योग के प्रभावों को स्वीकार कर चुके हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि नियमित योगाभ्यास से न केवल तनाव हार्मोन में कमी आती है, बल्कि प्रसन्नता और संतुलन के लिए जिम्मेदार रसायनों में वृद्धि होती है। यही कारण है कि योग आज वैश्विक स्तर पर अपनाया जा रहा है, किंतु इसका **भारतीय सांस्कृतिक और वैदिक मूलस्वरूप** बनाए रखना हमारी जिम्मेदारी है। अंततः, योग किसी समय विशेष की क्रिया नहीं, **जीवन की शैली** (way of life) है। यह जीवन के प्रत्येक क्षण को सजगता, संतुलन और सच्चाई से जीने की कला सिखाता है। यह हमें सिखाता है कि जीवन की असली सफलता भौतिक उपलब्धियों में नहीं, बल्कि आत्म-संतोष और आत्मज्ञान में है। योग वह सेतु है जो हमें प्रकृति से, समाज से, और सबसे अधिक — **अपने आप से जोड़ता है।** इस प्रकार, योग को यदि हम केवल एक व्यायाम या चिकित्सकीय साधन के रूप में देखें, तो हम उसकी पूर्णता से वंचित रह जाते हैं। योग को यदि हम जीवन की कला, एक **संपूर्ण दर्शन** और **अंतःप्रकाश की यात्रा** के रूप में आत्मसात करें, तभी वह हमें उस ऊँचाई तक पहुँचा सकता है जहाँ चित्त निर्मल हो, आत्मा स्वतंत्र हो, और जीवन दिव्यता से आलोकित हो।